व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र

डॉ० धर्मचन्द जैन

व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती) सूत्र में प्रश्नोत्तर शैली में जीव, अजीव, स्वमत, परमत, लोक, अलोक आदि से संबद्ध सूक्ष्म जानकारियाँ विद्यमान हैं। इसमें प्राणिशास्त्र, भूगोल, खगोल, भौतिकशास्त्र, स्वप्न, गणित, मनोविज्ञान, वनस्पतिशास्त्र आदि विविध विषयों से संबंधित तात्त्विक चर्चा मिलती है। यह सूत्र वैज्ञानिकों के लिए भी अध्येतव्य है। लेखक ने व्याख्याप्रज्ञप्ति की विषयवस्तु से परिचित कराने के साथ इसमें हुए अंगबाह्य आगमों के अतिदेश की भी चर्चा की है। —**सम्पादक**

पंचम अंग व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र का अपर नाम 'भगवतीसूत्र' है। 'भगवती' शब्द व्याख्याप्रज्ञप्ति की पूज्यता हेतु विशेषणरूप में प्रयुक्त हुआ था, किन्तु इस शब्द को इतनी प्रियता मिली कि अब व्याख्याप्रज्ञप्ति की अपेक्षा 'भगवती' नाम ही अधिक प्रचलित हो गया है। उपलब्ध अंग आगमों में भगवतीसूत्र सर्वाधिक विशाल है। प्रश्नोत्तर शैली में विरचित इस आगम में विषयवस्तु का वैविध्य है। इसमें अनेक दार्शनिक गुत्थियों का समाधान है। प्राणिशास्त्र, गर्भशास्त्र, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र, स्वप्न शास्त्र, गणित, ज्योतिष, इतिहास, खगोल, भूगोल, मनोविज्ञान, अध्यात्म, पुद्‌गल, वनस्पति आदि अनेक विषयों पर भगवती में रोचक एवं उपयोगी जानकारी उपलब्ध है। समवायांग एवं नन्दीसूत्र के अनुसार व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र में ३६००० प्रश्नों का समाधान है।[१] सभी प्रश्नों का उत्तर भगवान महावीर द्वारा किया गया है। प्रश्नकर्त्ता मुख्यत: गौतम गणधर हैं। प्रसंगानुसार रोह अनगार, जयन्ती श्राविका, मद्‌दुक श्रमणोपासक, सोमिल ब्राह्मण, तीर्थंकर पार्श्व के शिष्य कालास्यवेशीपुत्र, तुंगिका नगरी के श्रावक आदि के भी प्रश्नों का समाधान हुआ है। ऐतिहासिक दृष्टि से इसमें मंखलिगोशालक, जमालि, शिवराजर्षि, स्कन्द परिव्राजक, तामली तापस आदि से संबद्ध जानकारी भी मिलती है। गणित की दृष्टि से पार्श्वापत्यीय गांगेय अणगार के प्रश्नोत्तर महत्त्वपूर्ण हैं।

भगवतीसूत्र के अध्ययनों को 'शतक' या 'शत' नाम दिया गया है।[२] इसमें ४१ शतक तथा १०५ अवान्तर शतक हैं। अवान्तर शतकों एवं अन्य शतकों की संख्या मिलाकर १३८ होती है। पहले से ३२वें शतक तक किसी भी शतक में अवान्तर शतक नहीं है। ३३वें से ३९वें शतक तक ७ शतकों में प्रत्येक में १२—१२ अवान्तर शतक हैं। चालीसवें शतक में २१ अवान्तर शतक हैं। ४१वें शतक में अवान्तर शतक नहीं है। इन सभी शतकों को मिलाने से १३८ शतक होते है {३२ + ८४(१२X ७) + २१ +१}। उद्देशको की संख्या १८८३ या १९२३ है।[३] वर्तमान में इसका परिमाण १५७५१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोकप्रमाण है। व्याख्याप्रज्ञप्ति का प्राकृत नाम 'वियाहपण्णत्ति' है। कहीं कहीं इसका नाम 'विवाहपण्णत्ति' या 'विबाहपण्णत्ति' भी प्राप्त होता है। वृत्तिकार अभयदेवसूरि ने 'वियाहपण्णत्ति नाम को सर्वाधिक महत्त्व देकर इसकी व्याख्या चार प्रकार से की है। इनमें एक है— "वि—विविधा जीवाजीवादिप्रचुरतरपदार्थविषयाः, आ—अभिविधिना कथंचिन्निखिलज्ञेय-व्याप्त्या मर्यादया वा, ख्या—ख्यानानि भगवतो महावीरस्य गौतमादीन् विनेयान् प्रति प्रश्नितपदार्थप्रतिपादनानि व्याख्याः ताः प्रज्ञाप्यन्ते, भगवता सुधर्मस्वामिना जम्बूनामानमभि यस्याम्। अर्थात् गौतमादि शिष्यों को उनके द्वारा पूछे गए प्रश्नों का भगवान महावीर के द्वारा जीव, अजीव आदि विषयों पर उत्तम विधि से जिस शास्त्र में विशद उत्तर दिए गए और जिन्हें सुधर्मास्वामी ने जम्बूस्वामी को बताया—वह व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र है।[४]

भगवान ने इस सूत्र में क्लिष्ट से क्लिष्ट प्रश्नों का सरलरीति से ग्राह्य समाधान प्रस्तुत किया है। समवायांग सूत्र[५] के अनुसार इसमें "द्रव्य, गुण, क्षेत्र, काल, पर्याय, प्रदेश, परिणाम, यथा— अस्तिभाव, अनुगम, निक्षेप, नय, प्रमाण, सुनिपुण उपक्रमों के विविध प्रकार, लोकालोक के प्रकाशक, विस्तृत संसार-समुद्र से पार उतारने में समर्थ, इन्द्रों द्वारा संपूजित भव्य जनों के हृदयों को अभिनन्दित करने वाले, तमोरज का विध्वंसन करने वाले, सुदृष्ट दीपकस्वरूप, ईहा, मति और बुद्धि को बढ़ाने वाले— ३६ हजार व्याकरणों (उत्तरों) को प्रतिपादित करने से यह व्याख्याप्रज्ञप्ति शिष्यों के लिए हितकारक और गुणों के महान् अर्थ से परिपूर्ण है। इसकी वाचनाएँ परिमित हैं एवं संग्रहणियाँ संख्यात हैं। सौ से अधिक अध्ययन हैं, १० हजार उद्देशन काल हैं, १० हजार समुद्देशनकाल हैं, पद—गणना की अपेक्षा ८४ हजार पद हैं।" नन्दीसूत्र में २ लाख ८८ हजार पदाग्र कहे हैं।

भगवती सूत्र के प्रारम्भ में नमस्कार मन्त्र का मंगल उल्लेख करते हुए अर्थात् अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एवं साधुओं को नमस्कार करने के पश्चात् ब्राह्मीलिपि एवं 'श्रुत' को भी नमन किया गया है। मंगलाचरण का यह रूप भगवतीसूत्र में ही दृष्टिगोचर होता है। इससे इस सूत्र की विशिष्टता प्रकट होती है।

भण्डारी पदमचन्द जी महाराज के शिष्य श्री अमरमुनि जी ने भगवतीसूत्र की विषयवस्तु को १० खण्डों में विभक्त किया है[६]— १. आचारखण्ड २. द्रव्यखण्ड ३. सिद्धान्तखण्ड ४. परलोकखण्ड ५. भूगोल ६. खगोल ७. गणितशास्त्र ८. गर्भशास्त्र ९. चरित्रखण्ड १०. विविध। आचार्य श्री देवेन्द्रमुनि जी ने आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर से प्रकाशित व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र के चतुर्थ खण्ड में ९४ पृष्ठों की प्रस्तावना लिखते हुए भगवतीसूत्र में चर्चित निम्नांकित विषयों पर विशेष प्रकाश डाला है[७], जिससे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस सूत्र के वर्ण्य विषय का अनुमान हो जाता है— १. नमस्कार महामंत्र २. ब्राह्मीलिपि ३. गणधर गौतम ४. ज्ञान और क्रिया ५. कर्मबंध और क्रिया ६. निर्जरा ७. संतजीवन की महिमा और प्रकार ८. पाप और उसका फल ९. आध्यात्मिक शक्ति १०. प्रत्याख्यान ११. प्रायश्चित्त १२. तप एवं ध्यान १३. परीषह १४. मृत्यु की कला १५. ईशानेन्द्र एवं चमरेन्द्र १६. शिवराजर्षि १७. कालद्रव्य १८. पौषध १९. विभज्यवाद और अनेकान्तवाद २०. उदायन राजा २१. धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय २२. सोमिल ब्राह्मण के प्रश्न २३. अतिमुक्तकुमार २४. मोह २५. देवानन्दा ब्राह्मणी २६. जमालि एवं गोशालक २७. द्रव्यविषयक चिन्तन २८. आत्मा के आठ प्रकार २९. जीव के १४ भेद ३०. शरीर ३१. इन्द्रियाँ ३२. भाषा ३३. मन और उसके प्रकार ३४. भाव और उसके प्रकार ३५. योग और उसके प्रकार ३६. कषाय ३७. उपयोग और उसके प्रकार ३८. लेश्या ३९. कर्म ४०. पुद्गल ४१. समवसरण ४२.कालास्यवेशी। इन बिन्दुओं से विदित होता है कि भगवतीसूत्र की विषयवस्तु वैविध्यपूर्ण है।

व्याख्याप्रज्ञप्ति में जीव, अजीव, जीवाजीव, स्वसमय, परसमय, स्वपरसमय, लोक, अलोक, लोकालोक विषयक विस्तृत व्याख्या की गई है। इसमें कई रोचक विषय प्रश्नोत्तर शैली में स्पष्ट किए गए हैं, यथा— रोह अनगार के प्रश्न और भगवान् महावीर के उत्तर (शतक १, उद्देशक ६)—

प्रश्न— भगवन् पहले अण्डा है और फिर मुर्गी? अथवा पहले मुर्गी है या अण्डा?

भगवान्—रोह! वह अण्डा कहाँ से आया?

रोह— भगवन्! वह मुर्गी से आया।

भगवान्—वह मुर्गी कहाँ से आई?

रोह— भगवन्! वह अण्डे से आई।

भगवान्—इसी प्रकार हे रोह! मुर्गी और अण्डा पहले भी हैं और पीछे भी हैं। ये दोनों शाश्वत हैं । हे रोह! इनमें पहले पीछे का क्रम नहीं है।

इसी प्रकार लोक एवं अलोक को तथा जीव और अजीव को भगवान् ने शाश्वत बताया है।

पिंगल निर्ग्रन्थ द्वारा पूछे गए पाँच प्रश्नों का जब स्कन्दक परिव्राजक उत्तर न दे सका तो वह भगवान महावीर की सेवा में उपस्थित हुआ। भगवान ने उसकी शंकाओं को अपने ज्ञान से जान लिया एवं उनका संतोषप्रद समाधान पाकर स्कन्दक परिव्राजक भगवान महावीर का शिष्य बन गया। वे पाँच प्रश्न थे— १. लोक सान्त है या अनन्त? २. जीव सान्त है या अनन्त ३. सिद्धि सान्त है या अनन्त? ४. सिद्ध सान्त है या अनन्त ५. किस मरण से मरता हुआ जीव संसार बढ़ाता है और किस मरण से मरता हुआ जीव संसार घटाता है? भगवान् द्वारा दिए गए इन प्रश्नों के समाधानों में से प्रथम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न का समाधान इस प्रकार है—

हे स्कन्दक! मैंने चार प्रकार का लोक बताया है—द्रव्यलोक, क्षेत्रलोक, काललोक और भावलोक। उन चारों में से द्रव्य से लोक एक है और अन्त वाला है, क्षेत्र से लोक असंख्यात कोटाकोटि योजन तक लम्बा—चौड़ा और असंख्य कोटाकोटि योजन की परिधि वाला है तथा वह अन्तसहित है। काल से ऐसा कोई काल नहीं था, जिसमें लोक नहीं था, ऐसा कोई काल नहीं है, जिसमें लोक नहीं है, ऐसा कोई काल नहीं होगा, जिसमें लोक न होगा। लोक सदा था, सदा है और सदा रहेगा। लोक ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है, उसका अन्त नहीं है। भाव से लोक अनन्त वर्णपर्याय रूप, गन्धपर्यायरूप, रसपर्यायरूप और स्पर्शपर्यायरूप है। इसी प्रकार अनन्त संस्थानपर्यायरूप, अनन्त गुरुलघु-पर्यायरूप एवं अनन्त अगुरुलघुपर्यायरूप है; उसका अन्त नहीं है। इस प्रकार हे स्कन्दक! द्रव्यलोक अन्तसहित है, क्षेत्र लोक अन्त सहित है, काल लोक अन्तरहित है और भावलोक भी अन्तरहित है। (शतक २ उद्देशक १)

इसी प्रकार तीर्थंकर महावीर ने जीव, सिद्धि एवं सिद्ध को द्रव्य एवं क्षेत्र से सान्त तथा काल एवं भाव से अन्तरहित बताया है। मरण के दो प्रकार बताये हैं— बालमरण एवं पण्डितमरण। बालमरण से मरने वाला जीव संसार बढ़ाता है तथा पण्डितमरण से मरने वाला जीव संसार घटाता है।

गौतमस्वामी एवं भगवान महावीर के प्रश्नोत्तर द्रष्टव्य हैं (शतक २, उद्देशक ५)—

गौतम— भगवन्! तथारूप श्रमण या माहन की पर्युपासना करने वाले को पर्युपासना का क्या फल मिलता है?

भगवान— गौतम! श्रवण रूप (धर्म श्रवण रूप) फल मिलता है।

गौतम— भगवन्! उस श्रवण का क्या फल होता है?

भगवान— गौतम! श्रवण का फल ज्ञान है।

गौतम— भगवन्! ज्ञान का फल क्या है?

भगवान— गौतम! ज्ञान का फल विज्ञान(हेय,ज्ञेय एवं उपादेय का विवेचन) है।

गौतम— भगवन्! विज्ञान का फल क्या है?

भगवान— गौतम! विज्ञान का फल प्रत्याख्यान (हेय का त्याग) है।

गौतम— भगवन्! प्रत्याख्यान का फल क्या है?

भगवान— गौतम! प्रत्याख्यान का फल संयम (संवर) है।

गौतम— भगवन्! संयम का फल क्या है?

भगवान— गौतम! संयम का फल अनास्रव है।

इसी प्रकार अनास्रव का फल तप एवं तप का फल कर्म-निर्जरा बताया गया है। यह प्रतिपादन ज्ञान एवं क्रिया के एक रूप को प्रस्तुत करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शतक १२ उद्देशक २ में जयन्ती श्राविका ने भगवान से जो जिज्ञासा की,उसके समाधान भी पठनीय हैं, उदाहरणार्थ–

जयन्ती– भगवन्! जीवों का सुप्त रहना अच्छा है या जागृत रहना अच्छा?

भगवान्– जयन्ती! कुछ जीवों का सुप्त रहना अच्छा है तथा कुछ का जागृत रहना अच्छा है।

जयन्ती– भगवन्! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि कुछ जीवों का सुप्त रहना अच्छा है तथा कुछ का जागृत रहना अच्छा?

भगवान्– जयन्ती! जो अधार्मिक, अधर्मानुसर्ता, अधर्मिष्ठ, अधर्म का कथन करने वाले, अधर्मावलोकनकर्ता, अधर्म में आसक्त, अधर्माचरणकर्ता और अधर्म से ही आजीविका करने वाले जीव हैं, उन जीवों का सुप्त रहना अच्छा है, क्योंकि वे जीव सुप्त रहते हैं तो अनेक प्राणों, भूतों, जीवों और सत्त्वों को दुःख, शोक और परिताप देने में प्रवृत्त नहीं होते। वे जीव सोये रहते हैं तो अपने को दूसरे को और स्व–पर को अनेक अधार्मिक प्रपंचों में नहीं फंसाते। इसलिए उन जीवों का सुप्त रहना अच्छा है।

जयन्ती! जो धार्मिक हैं, धर्मानुसारी, धर्मप्रिय, धर्म का कथन करने वाले, धर्म के अवलोकनकर्ता, धर्मानुरक्त, धर्माचरण और धर्म से ही अपनी आजीविका करने वाले जीव हैं, उन जीवों का जाग्रत रहना अच्छा है, क्योंकि ये जीव जाग्रत हों तो बहुत से प्राणों, भूतों, जीवों और सत्त्वों को दुःख, शोक और परिताप देने में प्रवृत्त नहीं होते। ऐसे धर्मिष्ठ जीव जागृत रहते हुए स्वयं को, दूसरे को और स्व–पर को धार्मिक कार्यों में लगाते हैं। ये जीव जागृत रहते हुए धर्मजागरणा में अपने को जागृत रखते हैं।

इसलिए इन जीवों का जागृत रहना अच्छा है।

इसी कारण से, हे जयन्ती! ऐसा कहा जाता है कि कई जीवों का सुप्त रहना अच्छा है और कई जीवों का जागृत रहना अच्छा है।

प्रथम शतक के नवम उद्देशक में प्राणातिपात, मृषावाद आदि १८ पापों को संसार बढ़ाने वाला तथा इनसे विरमण को संसार घटाने वाला बताया गया है, यथा–

गौतम– भन्ते! जीव संसार को परिमित कैसे करते हैं?

भगवान्–गौतम! प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शन शल्य के विरमण से जीव संसार को परिमित करते हैं।

आज का विज्ञान त्रसकायिक एवं वनस्पतिकायिक जीवों में तो श्वसन क्रिया स्वीकार करता है, किन्तु पृथ्वीकायिक आदि अन्य एकेन्द्रिय जीवों के संबंध में मौन है। भगवती सूत्र शतक २ उद्देशक १ के श्वासोच्छ्वास पद में पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीवों में श्वसनक्रिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिपादित की गई है, यथा—

गौतम— ये जो पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक एवं वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय जीव हैं, इनके आन, अपान तथा उच्छ्वास और निःश्वास को हम न जानते हैं और न देखते हैं।

भन्ते! क्या ये जीव आन, अपान तथा उच्छ्वास और निःश्वास करते हैं?

भगवान्—हाँ गौतम! ये जीव भी आन, अपान तथा उच्छ्वास और निःश्वास करते हैं।

श्रमण—निर्ग्रन्थों के सम्मुख जाने पर पांच प्रकार के अभिगमों का श्रावक को पालन करना चाहिए। इन पांच अभिगमों का उल्लेख भगवती सूत्र के नवम शतक के ३३वें उद्देशक में देवानन्दा ब्राह्मणी द्वारा भगवान महावीर के सम्मुख जाते समय हुआ है—

तए णं सा देवाणंदा माहणी......समणं भगवं महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छइ, तंजहा— सचित्ताणं दव्वाणं विओसरणयाए अचित्ताणं दव्वाणं अविमोयणयाए, विणयोणयए गायलट्ठीए चक्खुफासे अंजलिपग्गेहणं, मणस्स एकतीभावकरणेणं।

पाँच अभिगम हैं— १. सचित्त द्रव्यों का त्याग २. अचित्त द्रव्यों का त्याग न करना (किन्तु विवेक रखना) ३. विनय से शरीर को झुकाना ४. भगवान के दृष्टिगोचर होते ही दोनों हाथ जोड़ना ५. मन को एकाग्र करना।

यह लोक कितना विशाल है, इसके संबंध में शतक ११ उद्देशक १० में देवों की गति का उदाहरण देकर समझाया गया है, जिसका सारांश यह है कि दिव्य तीव्र गति वाले देव हजारों वर्षों तक गमन करके भी लोकान्त तक नहीं पहुंच सकते, लोक इतना विशाल है।

आत्मा ज्ञान एवं दर्शनस्वरूप है या भिन्न, इस संबंध में भगवती सूत्र का स्पष्ट प्रतिपादन है—

आया भंते! नाणे अन्नाणे?

गोयमा! आया सिय नाणे, सिय अन्नाणे, नाणे पुण नियमं आया।

(शतक 12, उद्देशक 10, सूत्र 10)

आया भंते दंसणे, अन्ने दंसणे?

गोयमा! आया नियमं दंसणे, दंसणे वि नियमं आया।

(शतक 12, उद्देशक 10, सूत्र 16)

गौतम— भगवन्! आत्मा ज्ञान स्वरूप है या अज्ञान स्वरूप?

भगवान्— गौतम! आत्मा कदाचित् ज्ञानरूप है, कदाचित् अज्ञान रूप है, किन्तु ज्ञान तो नियम से आत्मस्वरूप है।

गौतम— भगवन्! आत्मा दर्शनरूप है या दर्शन उससे भिन्न है?

भगवान्— गौतम! आत्मा नियमतः दर्शनरूप है और दर्शन भी नियमतः आत्मरूप है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा का स्वरूप ज्ञान एवं दर्शनरूप है। जब ज्ञान के सम्यक् रूप पर आवरण आ जाता है तब उसे अज्ञानरूप कहा गया है। वास्तव में तो आत्मा ज्ञानदर्शन स्वरूप ही है। इसे ही उपयोगमयत्व भी कहा गया है।

व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र में जीव संबंधी विस्तृत चर्चा मिलती है। जीवों की चार गतियाँ एवं २४ दण्डक हैं। व्याख्याप्रज्ञप्ति में बहुत सी चर्चा २४ दण्डकों में हुई है। २४ दण्डक हैं– सप्तविध नारकियों का १ दण्डक, देवों के १३ दण्डक (भवनपति के १० दण्डक, वाणव्यन्तर ज्योतिषी एवं वैमानिक के ३ दण्डक) पृथ्वीकायिक आदि पांच स्थावरों के ५ दण्डक, विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय) के ३ उदण्डक, तिर्यंच पचेन्द्रिय का १ दण्डक, मनुष्य का १ दण्डक। २४वें शतक में इन २४ दण्डकों का २० द्वारों से निरूपण किया गया है। २० द्वार हैं– १. उपपात २. परिमाण ३. संहनन ४. ऊँचाई ५. संस्थान ६. लेश्या ७. दृष्टि ८. ज्ञान, अज्ञान ९. योग १०. उपयोग ११. संज्ञा १२. कषाय १३. इन्द्रिय १४. समुद्घात १५. वेदना १६. वेद १७. आयुष्य १८. अध्यवसाय १९. अनुबन्ध २०. काय संवेध।

सप्तम शतक के षष्ठ उद्देशक में प्रतिपादित किया गया कि अगले भव के आयुष्य का बन्ध इसी भव में हो जाता है, किन्तु उसका वेदन अगले भव में उत्पन्न होने के पश्चात् होता है।

जीव के द्वारा गर्भ में सर्वप्रथम माता के ओज (आर्तव) एवं पिता के शुक्र का आहार किया जाता है, तदनन्तर वह माता द्वारा गृहीत आहार के एक देश के ओज को ग्रहण करता है। एक प्रश्न किया जाता है कि क्या गर्भ में रहे हुए जीव के मलमूत्रादि यावत् पित्त नहीं होते हैं? इसका उत्तर देते हुए कहा गया–

गौतम! गर्भ में जाने पर जीव जो आहार करता है, जिस आहार का चय करता है, उस आहार को श्रोत्रेन्द्रिय के रूप में यावत् स्पर्शेन्द्रिय के रूप में तथा हड्डी, मज्जा, केश, दाढी, मूंछ, रोम और नखों के रूप में परिणत करता है। इस कारण से गौतम! ऐसा कहा जाता है कि गर्भ में रहे हुए जीव के मल–मूत्रादि यातव् पित्त नहीं होते हैं। (शतक १ उद्देशक ७)

गर्भगत जीव मुख से कवलाहार नहीं करता है। वह सब ओर से आहार करता है, सारे शरीर से परिणमाता है, बार–बार उच्छ्वास लेता है, बार–बार नि:श्वास लेता है, कभी आहार करता है, कभी परिणमाता है, कभी उच्छ्वास लेता है, कभी नि:श्वास लेता है तथा संतति के जीव को रस पहुँचाने में कारणभूत और माता के रस लेने में कारणभूत जो मातृजीवसहरणी नाम की नाड़ी है उसका माता के जीव के साथ संबंध है और सन्तति के जीव के साथ स्पृष्ट है, उस नाड़ी द्वारा वह गर्भगत जीव आहार लेता है और आहार को परिणमाता है। (शतक १ उद्देशक ७)

भगवती सूत्र की विषयवस्तु को संक्षेप में समेटना कठिन है। इसके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्येक शतक एवं उसके प्रत्येक उद्देशक में भी कई बार नये–नये विषयों पर प्रश्न एवं उनके समाधान है। इसमें जो जानकारी है वह अद्भुत है। जीव के गर्भ में आगमन से लेकर, जीवन स्थिति, मरण आदि विविध विषय वर्णित हैं जो आधुनिक विज्ञान के लिए भी शोध हेतु उपयोगी एवं मार्गदर्शक हो सकते हैं। नारक, देव, तिर्यंच और मनुष्य इन चारों गतियों के जीवों के विभिन्न पक्षों का इस आगम में वर्णन उपलब्ध है।

लोक के एक आकाशप्रदेश में एकेन्द्रियादि जीव प्रदेश परस्पर बद्ध यावत् सम्बद्ध हैं, फिर भी वे एक–दूसरे को बाधा या व्याबाध नहीं पहुंचाते, अवयवों का छेदन नहीं करते। इस तथ्य को समझाने हेतु नर्तकी का उदाहरण दिया गया। जिस प्रकार नाट्य करती हुई नर्तकी पर प्रेक्षकों की दृष्टि पड़ती है, किन्तु वह नर्तकी दर्शकों की उन दृष्टियों को कुछ भी बाधा-पीड़ा उत्पन्न नहीं करती है, इसी प्रकार जीवों के आत्मप्रदेश परस्पर बद्ध, स्पृष्ट यावत् संबद्ध होने पर आबाधा या व्याबाधा उत्पन्न नहीं करते। (श. ११उद्दे. १०)

पुद्गल के संबंध में व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र में विविध जानकारियाँ हैं। परिणति की दृष्टि से पुद्गल तीन प्रकार के बताये गए–१. प्रयोग–परिणत, २. मिश्र परिणत और विस्रसा परिणत।(शतक ८ उद्देशक १) जीव के व्यापार से शरीर आदि के रूप में परिणत पुद्गलों को प्रयोग–परिणत, प्रयोग और स्वभाव (विस्रसा) इन दोनों विधियों के द्वारा परिणत पुद्गल को मिश्र परिणत एवं स्वभाव से परिणत पुद्गल को विस्रसा–परिणत कहा गया है। सबसे अल्प पुद्गल प्रयोग परिणत हैं, मिश्र परिणत उससे अनन्तगुण हैं तथा विस्रसा परिणत उससे भी अनन्तगुण हैं। शतक १२ उद्देशक ४ में परमाणु पुद्गलों के संयोग एवं विभाग का निरूपण है।

परमाणु के संबंध में शतक १८ उद्देशक १० में कहा है कि परमाणु पुद्गल एक समय में सारे लोक को लांघ सकता है। परमाणु की यह गति विज्ञान के लिए भी अन्वेषणीय है। एक परमाणु में भी वर्ण, गन्ध, रस एवं स्पर्श को स्वीकार किया गया है। शतक १६ उद्देशक १८ में पुद्गल की स्वाभाविक गतिशीलता बतायी है। धर्मास्तिकाय उसका प्रेरक नहीं सहायक है। परमाणु में जीवनिमित्तक गति नहीं होती, क्योंकि परमाणु जीव के द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता और पुद्गल को ग्रहण किये बिना पुद्गल में परिणमन कराने की जीव में सामर्थ्य नहीं है।

यह एक ज्ञातव्य तथ्य है कि भगवती सूत्र अंग आगम होते हुए भी इसमें पश्चात् रचित राजप्रश्नीय, औपपातिक, प्रज्ञापना, जीवाभिगम तथा नन्दीसूत्र का अतिदेश करके अनेक स्थलों पर भगवती सूत्र के विवरणों को तथा कहीं सम्पूर्ण उद्देशकों को संक्षिप्त कर दिया गया है। इसके संभावित कारणों की चर्चा करते हुए आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज ने इस प्रकार समाधान किया है[८]– "वीरनिर्वाण संवत् ९८० में सूत्र अन्तिम रूप में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिपिबद्ध किए गए। ऐसा प्रतीत होता है कि आगमों को लिपिबद्ध करते समय इस नियम का पालन करना आवश्यक नहीं समझा गया कि जिस अनुक्रम से आगमों की रचना हुई है, उसी क्रम से उनको लिपिबद्ध किया जाय। इसके परिणामस्वरूप पश्चाद्वर्ती काल में रचित कतिपय आगमों का लेखन सुविधा की दृष्टि से पहले सम्पन्न कर लिया गया।.....पश्चाद्वर्ती आगम होते हुए भी जो पहले लिपिबद्ध कर लिए गए थे और उनमें पूर्ववर्ती जिन आगमों के जो–जो पाठ अंकित हो चुके थे उन पाठों की पुनरावृत्ति न हो, इस दृष्टि से बाद में लिपिबद्ध किए जाने वाले पूर्ववर्ती आगमों में 'जहा नन्दी' आदि पाठ देकर पश्चाद्वर्ती आगमों और आगमपाठों का उल्लेख कर दिया गया। यह केवल पुनरावृत्ति को बचाने की दृष्टि से किया गया। इससे मूल रचना की प्राचीनता में किसी प्रकार की किंचित् मात्र भी न्यूनता नहीं आती। हो सकता है उस समय आगमों को लिपिबद्ध करते समय पुनरावृत्ति के दोष से बचने के साथ–साथ इस विशाल पंचम अंग व्याख्याप्रज्ञप्ति के अतिविशाल स्वरूप एवं कलेवर को थोड़ा लघुस्वरूप प्रदान करने की भी उन देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण आदि आचार्यों की दृष्टि रही हो।''

पं. दलसुख मालवणिया ने यह समाधान इस प्रकार किया है[९]– ''यह भी कह देना आवश्यक है कि ऐसा क्यों नहीं किया गया। जैन परम्परा में यह एक धारणा पक्की हो गयी है कि भगवान् महावीर ने जो कुछ उपदेश दिया वह गणधरों ने अंग में ग्रथित किया। अर्थात् अंगग्रन्थ गणधरकृत हैं और तदितर स्थविरकृत हैं। अतएव प्रामाण्य की दृष्टि से प्रथम स्थान अंग को मिला है। अतएव नयी बात को भी यदि प्रामाण्य अर्पित करना हो तो उसे भी गणधरकृत बताना आवश्यक था। इसी कारण से उपांग की चर्चा को भी अंगान्तर्गत कर लिया गया। यह तो प्रथम भूमिका की बात हुई, किन्तु इतने से संतोष नहीं हुआ तो बाद में दूसरी भूमिका में यह परम्परा भी चलाई गई कि अंगबाह्य भी गणधरकृत हैं और उसे पुराण तक बढ़ाया गया। अर्थात् जो कुछ जैन नाम से चर्चा हो, उस सबको भगवान् महावीर और उनके गणधर के साथ जोड़ने की यह प्रवृत्ति इसलिए आवश्यक थी कि यदि उसका संबंध भगवान् और उनके गणधरों के साथ जोड़ा जाता है तो फिर उसके प्रामाण्य के विषय में किसी को सन्देह करने का अवकाश मिलता नहीं है। इस प्रकार चारों अनुयोगों का मूल भगवान् महावीर के उपदेश में ही है, यह एक मान्यता दृढ हुई।''

आचार्य महाप्रज्ञ ने भगवतीसूत्र में उपांगों के अतिदेश के संबंध में भिन्न रीति से विचार करते हुए उसे भगवती में परिवर्धित विषय माना है[१०]– ''जहां जहां प्रज्ञापना, जीवाजीवाभिगम आदि का निर्देश है वे सब प्रस्तुत आगम में परिवर्धित विषय हैं। यह कल्पना उन प्रकरणों के अध्ययन से स्पष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो जाती है। इसकी संभावना नहीं की जा सकती कि प्रस्तुत आगम में निर्देशित विषय पहले विस्तृत रूप में थे और संकलन काल में उन्हें संक्षिप्त किया गया और उनका विस्तार जानने के लिए अंगबाह्य सूत्रों का निर्देश किया गया। अंगबाह्य सूत्रों में अंगों का निर्देश किया जा सकता था, किन्तु अंगसूत्रों में अंगबाह्य सूत्रों का निर्देश कैसे किया जा सकता था? वह किया गया है। इससे स्पष्ट है कि उन निर्देशों से संबंधित विषय प्रस्तुत आगम में जोड़कर उसे व्यवस्थित करने का प्रयत्न किया गया है।'' आचार्य महाप्रज्ञ आगे लिखते है– ''भगवती के मूलपाठ और संकलन काल में परिवर्धित पाठ का निर्णय करना यद्यपि सरल कार्य नहीं है, फिर भी सूक्ष्म अध्यवसाय के साथ यह कार्य किया जाए तो असम्भव भी नहीं।''

इस संदर्भ में उपर्युक्त तीनों मनीषियों के विचार महत्त्वपूर्ण हैं, किन्तु हमें इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि अंग आगमों एवं उपांग आगमों को अन्तिम रूप देवर्द्धिगणी ने अपनी वाचना में दिया है। उन्हें समस्त आगमों एवं उनकी विषयवस्तु की पूर्ण जानकारी थी। अत: उन्होंने या तो भगवतीसूत्र के अतिविशाल आकार को संक्षिप्त करने की दृष्टि से अंगबाह्य आगमों में आगत विषय का अतिदेश भगवतीसूत्र में कर दिया हो या फिर अंगबाह्य आगमों में चर्चित संबद्ध विषय को भगवती में सम्मिलित करने की दृष्टि से यथावश्यक अतिदेश कर उन्हें जोड़ दिया हो। ऐसा करने में उनका अपना विवेक ही प्रमुख कारण प्रतीत होता है।

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र की कतिपय विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

१. यह अंगप्रविष्ट एवं अंगबाह्य आगमों में आकार में सबसे बड़ा है।
२. इसमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, लोक, अलोक, स्वसमय, परसमय आदि के संबंध में सूक्ष्म जानकारियाँ विद्यमान हैं।
३. प्रश्नोत्तर शैली में यह आगम स्थूल से सूक्ष्मता की ओर ले जाता है। जीव, उसके श्वासोच्छ्वास, आहार, गर्भ, आदि के संबंध में तथा परमाणु के संबंध में इस आगम में आश्चर्यजनक सूचनाएँ उपलब्ध हैं।
४. अधिकांश प्रश्न गणधर गौतम के द्वारा पूछे गए हैं तथा उनके उत्तर भगवान महावीर द्वारा दिये गए हैं। रोह, जयन्ती आदि के द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर भी भगवान महावीर ने दिए हैं।
५. प्रश्नों का उत्तर देते समय विभज्यवाद एवं स्याद्वाद की शैली अपनायी गई है। प्रश्नों को कतिपय खण्डों में विभक्त कर उत्तर देना विभज्यवाद है तथा 'सिया' (स्यात्) पद के प्रयोगपूर्वक उत्तर देना स्याद्वाद है। उत्तर देते समय भगवान महावीर की दृष्टि में अनेकान्तवाद निहित रहता है। इसलिए वे किसी दृष्टिकोण विशेष से भिन्न–भिन्न प्रकार के उत्तर देते हैं, यथा द्रव्य एवं क्षेत्र की अपेक्षा लोक सान्त है तथा काल एवं भाव की अपेक्षा लोक अनन्त है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. इसमें नारक की रत्नप्रभा आदि पृथ्वियों, नारक जीवों एवं देवों का विशिष्ट वर्णन उपलब्ध है।

७. वनस्पति के वर्णन हेतु इसमें कई शतक हैं। शतक ११, शतक २१, शतक २२ एवं शतक २३ में वनस्पतिकायिक जीवों यथा– उत्पल, शलूक, पलाश, कुम्भिक, पद्म, कर्णिका, नलिन, शालि, अलसी, वंश, इक्षु, दर्भ, अभ्र, तुलसी आदि का रोचक वर्णन है।

८. इसमें १८ पापों एवं उनमें वर्ण आदि का भी प्ररूपण है।

९. गोशालक का शतक १५ में विस्तृत वर्णन है। इसके अतिरिक्त शिवराजर्षि(शतक ११ उद्देशक९), जमालि (शतक ९.३३,२२.११२, ११.९, ११.११,१३.६), स्कन्द परिव्राजक, तामली तापस (शतक ३.१, ३.२, ११.९) आदि का भी वर्णन है।

१०. लेश्या, विकुर्वणा, समुद्घात, इन्द्रिय, अश्रुत्वा केवली, स्वप्न, क्रिया, उपपात, काल, भाषा, केवली, ज्ञान आदि के संबंध में भी इस सूत्र में विशष्ट जानकारियाँ हैं, जो ज्ञानवर्धन में सहायक हैं।

११. इसमें कई नये पारिभाषिक शब्द हैं, यथा– कल्योज, द्वापरयुग्म, त्र्योज, अनन्तरोपपन्नक, परम्परोपपन्नक, अनन्तरावगाढ, परम्परावगाढ, क्षुद्रयुग्म आदि।

१२. कर्म-सिद्धान्त, बन्ध, आस्रव, आयु आदि के संबंध में भी यह आगम नवीन सूचनाएं देता है।

१३. इस आगम में ज्ञान के विविध क्षेत्र जिस सूक्ष्मता से स्पृष्ट हैं वे अपने आपमें अद्भुत हैं।

व्याख्या-साहित्य

भगवतीसूत्र पर न निर्युक्ति उपलब्ध है, न ही कोई भाष्य। एक अतिलघु चूर्णि है, जिसके प्रकाशन का प्रारम्भ लाडनूँ से प्रकाशित भगवई में हुआ है। इस चूर्णि के रचयिता जिनदास महत्तर को स्वीकार किया गया है। यह चूर्णि प्राकृत प्रधान है। नवांगी टीकाकार अभयदेवसूरि की वृत्ति इस आगम पर उपलब्ध है। इसका ग्रन्थमान अनुष्टुप् श्लोक के परिमाण से १८६१६ है। इस वृत्ति से भगवती सूत्र के रहस्यों को समझने में सरलता होती है। इसे विक्रम संवत् ११२८ में अणहिल पाब्ण नगर में पूर्ण किया गया था। व्याख्याप्रज्ञप्ति पर दूसरी वृत्ति मलयगिरि की है जो द्वितीय शतक वृत्ति के रूप में जानी जाती है। विक्रम संवत् १५८३ में हर्षकुल ने टीका लिखी। दानशेखर ने लघुवृत्ति लिखी। भावसागर एवं पद्मसुन्दरगणि ने भी व्याख्याएँ लिखी हैं। धर्मसिंह जी द्वारा व्याख्याप्रज्ञप्ति पर टब्बा लिखे जाने की भी सूचना मिलती है। पूज्य घासीलाल जी महाराज ने भी इस पर संस्कृत में व्याख्या का लेखन किया है। आचार्य महाप्रज्ञ ने हिन्दी में भाष्य-लेखन किया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, जिसका प्रथम खण्ड द्वितीय शतक तक प्रकाशित है। हिन्दी एवं गुजराती अनुवाद अनेक स्थानों से प्रकाशित हैं।

संदर्भ

१. (अ) समवायांग सूत्र ९३, नन्दीसूत्र ८५
   (ब) तत्त्वार्थराजवार्तिक १.२०, षट्खण्डागम, भाग १, पृष्ठ १०१ एवं कसायपाहुड, प्रथम अधिकारपृष्ठ १२५ के अनुसार इसमें ६० हजार प्रश्नों का व्याकरण है।
२. इह सतं चेव अज्झयणसण्णं—नन्दीचूर्णि सूत्र ८९ पृ. ६५
३. जैनधर्म का मौलिक इतिहास, भाग—२ के अनुसार इसमें १८८३ शतक हैं, जबकि आगम प्रकाश समिति, ब्यावर एवं भगवई (लाडनूँ) के अनुसार १९२३ शतक हैं। १९२५ शतकों का उल्लेख भगवतीसूत्र के उपसंहार में पाया जाता है। बीसवें शतक के छठे उद्देशक में पृथ्वी, अप् और वायु इन तीनों की उत्पत्ति का निरूपण है। एक परम्परा के अनुसार यह एक उद्देशक है, दूसरी परम्परा के अनुसार ये तीन उद्देशक हैं। तीन उद्देशक मानने पर उद्देशकों की संख्या १९२५ हो जाती है।
४. अन्य तीन प्रकार है—
   (अ) अथवा विविधतया विशेषेण वा आख्यायन्त इति व्याख्या— अभिलाप्यपदार्थवृत्तय:, ता: प्रज्ञाप्यन्ते यस्याम्।
   (ब) अथवा व्याख्यानाम्— अर्थप्रतिपादनानां प्रकृष्टा: ज्ञप्तयो— ज्ञानानि यस्यां सा व्याख्याप्रज्ञप्ति:।
   (स) अथवा व्याख्याया: अर्थकथनस्य प्रज्ञायाश्च—तद्धेतुभूतबोधस्य व्याख्यासु बा प्रज्ञाया: आप्ति:—प्राप्ति: आत्तिर्वा—आदानं यस्या: सकाशादसौ व्याख्याप्रज्ञप्तिर्व्याख्याप्रज्ञात्तिर्वा व्याख्याप्रज्ञाद्वा भगवत: सकाशादाप्तिरात्तिर्वा गणधरस्य यस्या: सा तथा।

   अभयदेवसूरि ने 'विवाहपण्णत्ति एवं 'विबाहपण्णत्ति' नामों की भी संगति बतायी है।
५. समवायांगसूत्र, सूत्र १४०
६. सम्पादकीय, पृ. १६—१७, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ग्रंथाक १४, आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर
७. उनकी यह प्रस्तावना 'भगवती सूत्र : एक परिशीलन' नाम से तारक गुरु ग्रन्थालय, उदयपुर से विक्रम संवत् २०४९ में प्रकाशित हो गई है।
८. जैन धर्म का मौलिक इतिहास, भाग—२, पृ. १४०, जैन इतिहास समिति, जयपुर, सन् १९९५
९. जैन दर्शन का आदिकाल, पृ. १३
१०. भगवई, खण्ड—१, भूमिका पृ. ३३, लाडनूँ

— 3 K 24–25, कुड़ी भगतासनी हाउसिंग बोर्ड, जोधपुर (राज.)342005

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org